एचडीएफसी सिक्योरिटीज लिमिटेड और अन्य

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य।

(आपराधिक अपील संख्या 1213/2016)

09 दिसम्बर 2016

[पिनाकी चंद्र घोष और अमिताव रॉय, जे.जे.]

भारत का संविधान: अनुच्छेद 227-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपीलकर्ताओं द्वारा उनकी सहमति के बिना उनके खाते में अनाधिकृत व्यापार के निष्पादन के आरोप के तहत धारा 156(3) के अन्तर्गत आपराधिक शिकायत दायर की गई। मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया और जांच के बाद रिपोर्ट देने का आदेश दिया - धारा 409, 420, 465, 467 सपठित धारा 34 और 120-बी, आईपीसी के अन्तर्गत एफआईआर का पंजीकरण-रिट याचिकाएं एफआईआर को रद्द करने के लिए - उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं को इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह समय से पहले था और अनुच्छेद 227 या 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।- अपील में माना: तत्काल मामले में, एक तथ्यान्वेषी जांच का निर्देश दिया गया था - अपीलकर्ताओं ने प्रक्रिया जारी करने के चरण से पहले ही उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था - विशेष रूप

से, अपीलकर्ताओं ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अन्तर्गत धारा 156(3). सी.आर.पी.सी. को चुनौती दी थी। यह आदेश अन्तर्गत धारा 156(3) सी.आर.पी.सी. पुलिस द्वारा जांच की आवश्यकता होने पर, यह नहीं कहा जा सकता कि इससे अपूरणीय प्रकृति की क्षति हुई है, जिसके लिए, इस स्तर पर, जांच को रद्द करने की आवश्यकता है - संज्ञान का चरण मजिस्ट्रेट के समक्ष जांच रिपोर्ट दायर होने के बाद ही उत्पन्न होगा, इसलिए, इस स्तर पर, उच्च न्यायालय ने सही माना कि धारा 227 या धारा 227 और धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत दाखिल की गईं याचिकाएं इस स्तर पर अपरिपक्वता के अलावा कुछ भी नहीं है - इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने सही ढंग से निष्कर्ष निकाला कि धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाेंं का उपयोग संयमित रूप से किया जाना चाहिए - उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - एसएस.482, 156(3).

न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया गया :-

1. वर्तमान मामले में, एक तथ्यान्वेषी जांच का निर्देश दिया गया था और परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता संख्या 2 से 4 के खिलाफ और अपीलकर्ता-कंपनी के रिलेशनशिप मैनेजर के खिलाफ भी एफआईआर दर्ज की गई थी। भारतीय आपराधिक कानूनी प्रणाली के तहत आरोपी को कानून के अनुसार, जब तक कि वह दोषी साबित न हो जाए, अपना बचाव

करने की जगह और स्वतंत्रता है, हमेशा उचित दंड दिया जाएगा! इसके अलावा, किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दोषी नहीं होने का दावा करता है कि वह किसी अदालत, या अन्य न्यायाधिकरण के समक्ष उस प्रकृति की आपराधिक कार्यवाही या कार्यवाहियों में सहयोग करेगा और भाग लेगा, जिसके समक्ष उस पर आरोप लगाया जा सकता है। 'अपराध' जैसा कि सामान्य धारा अधिनियम की धारा 3(38) में परिभाषित किया गया है, यानी, दंड संहिता या किसी विशेष या स्थानीय कानून के तहत दंडनीय कार्य। साथ ही, अपराध का संज्ञान लेते समय या कोई आदेश जारी करते समय अदालतों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना दिमाग लगाएं और आदेश तर्कसंगत होना चाहिए। यदि शिकायत को पढ़ने पर मजिस्ट्रेट को पता चलता है कि आरोप संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं और धारा 156(3) के तहत जांच के लिए शिकायत को पुलिस के पास भेजना न्याय के लिए अनुकूल होगा और किसी मामले की जांच करने में बर्बाद होने वाले मजिस्ट्रेट के बहुमूल्य समय को बचाएगा, जिसकी जांच करना मुख्य रूप से पुलिस का कर्तव्य था, अपराध का स्वयं संज्ञान लेने के विकल्प के रूप में उस रास्ते को अपनाना उचित होगा। [पैरा 15, 2111978-डी-एफ; 982-डी-ई]

ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार 2013 (14) एससीआर 713: (2014) 2 एससीसी 1; एसके अलघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। 2008 (2) एससीआर 1088: (2008) 5 एससीसी 662; मकसूद

सैय्यद बनाम गुजरात राज्य और अन्य। 2007 (9) एससीआर 1113: (2008) 5 एससीसी 668; थर्मैक्स लिमिटेड और अन्य। वी. के.एम. जॉनी एवं अन्य। 2011 (14) एससीआर 154: (2011) 13 एससीसी 412; सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो 2015 (1) एससीआर 377 (2015) 4 एससीसी 609- पर भरोसा किया।

2. अपीलकर्ताओं ने प्रक्रिया जारी होने के चरण से पहले ही उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। विशेष रूप से, अपीलकर्ताओं ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी। यह आदेश सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत दिया गया है। पुलिस द्वारा जांच की आवश्यकता के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि इससे अपूरणीय प्रकृति की क्षति हुई है, जिसके लिए इस स्तर पर जांच को रद्द करने की आवश्यकता है। संज्ञान की स्थिति जांच रिपोर्ट दाखिल होने के बाद ही मजिस्ट्रेट के समक्ष उठेगी. इसलिए, इस स्तर पर उच्च न्यायालय ने सही निर्णय लिया है! इस स्थिति में तथ्यों और कानून का आकलन किया और उस फाइलिंग को बरकरार रखा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिकाएं, इस स्तर पर समय से पहले के अलावा और कुछ नहीं हैं। [पैरा 24|[983-सी-एफ)

अनिल कुमार बनाम एम.के. अयप्पा 2013 (9) एससीआर 869: (2013) 10 एससीसी 705; देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण बनाम वी. नारायण

रेड्डी और अन्य। 1976 (0) सप्ल. एससीआर 524 : (1976) 3 एससीसी 252; राम देव फूड प्रोडक्ट्स प्रा. लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य 2015 (5) एससीआर 283 (2015) 6 एससीसी 439; इकबाल सिंह मारवाह और अन्य। वी. मीनाक्षी मारवाह और अन्य। 2005 (2) एससीआर 708: (2005) 4 एससीसी 370; रुख्मनी नार्वेकर बनाम विजया स्टेटार्डेकर और अन्य। 2008 (14) एससीआर 271: (2008) 14 एससीसी 1; ऑल कार्गो मूवर्स (इंडिया) (पी.) लिमिटेड बनाम धनेश बदरवाल जैन, 2007 (11) एससीआर 271: (2007) 14 एससीसी 776; माधवराव जीवनराव सिंधिया और अन्य। संभाजीराव चंद्रजीराव एंगल और अन्य। (1998) 1 एससीसी 692; हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल 1990 (3) पूरक। एससीआर 259: 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335; राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर 2013 (3) एससीआर 52: (2013) 3 एससीसी 330; ऋषि पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। 2014 (6) एससीआर 1012: (2014) 7 एससीसी 215; आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता एवं अन्य। 2008 (14) एससीआर 1249: (2009) 1 एससीसी 516; शरद कुमार सांघी बनाम संगता राणे 2015 (2) एससीआर 145: (2015) 12 एससीसी 781 संदर्भित।

<u>केस कानून संदर्भ</u>

2013 (9) एससीआर 869	संदर्भ दिया	पैरा 10

1976 (0) सप्ल. एससीआर 524	संदर्भ दिया	पैरा 12
2015 (5) एससीआर 283	संदर्भ दिया	पैरा 12
2013 (14) एससीआर 713	निर्भर किया	पैरा 14
2005 (2) एससीआर 708	संदर्भ दिया	पैरा 16
2008 (14) एससीआर 271	संदर्भ दिया	पैरा 16
2007 (11) एससीआर 271	संदर्भ दिया	पैरा 16
(1998) 1 एससीसी 692	संदर्भ दिया	पैरा 17
1990 (3) सप्ल. एससीआर 259	संदर्भ दिया	पैरा 17
2013 (3) एससीआर 52	संदर्भ दिया	पैरा 17
2014 (6) एससीआर 1012	संदर्भ दिया	पैरा 17
2008 (2) एससीआर 1088	निर्भर किया	पैरा 18
2007 (9) एससीआर 1113	निर्भर किया	पैरा 18
2011 (14) एससीआर 154	निर्भर किया	पैरा 18
2015 (1) एससीआर 377	निर्भर किया	पैरा 18
2008 (14) एससीआर 1249	संदर्भ दिया	पैरा 19
2015 (2) एससीआर 145	संदर्भ दिया	पैरा 20

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1213/ 2016

बॉम्बे उच्च न्यायालय के 2011 के आपराधिक डब्लू.पी. संख्या 672 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 16.11.2011 से।

डॉ. ए. एम. सिंघवी, सिद्धार्थ लूथरा, वरिष्ठ वकील, कुणाल वजानी, अमन गांधी, गौतम खजांची, सुश्री तारा नरूला, सुश्री बिंदी गिरीश दवे, वकील अपीलकर्ताओं के लिए.

बसवा प्रभु एस. पाटिल, वरिष्ठ अधिवक्ता, अनिरुद्ध सांगानेरिया, चिन्मय देशपांडेय, अमजिद मकबूक, मोहिंदर जीत सिंह, कुणाल ए. चीमा, योगेश के. अहिरराव, निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर, वकील उत्तरदाताओं के लिए.

न्यायालय का निर्णय, न्यायधीश पिनाकी चंद्र घोष, जे. द्वारा पारित किया गया :-

1. अनुमति दी गई।

2. यह अपील 2011 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 672 में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा पारित 16 नवंबर, 2011 के फैसले और आदेश पर हमला करते हुए दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाएं उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दी गई थीं कि रिट याचिका समय से पहले दायर की गई थी और भारत के

संविधान के अनुच्छेद 227 या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं: अपीलकर्ता नंबर 1 - एचडीएफसी सिक्योरिटीज लिमिटेड, एक सार्वजनिक देयता कंपनी है (इसके बाद संक्षेप में "कंपनी" के रूप में संदर्भित), अपीलकर्ता नंबर 2 कंपनी का प्रबंध निदेशक है, अपीलकर्ता नंबर 3 कंपनी का बिजनेस हेड है, और अपीलकर्ता नंबर 4 क्रमशः कंपनी के मुंबई क्षेत्र का क्षेत्रीय प्रमुख है। प्रतिवादी नंबर 1 महाराष्ट्र राज्य है और प्रतिवादी नंबर 2 एक व्यक्ति है, जिसका कंपनी में खाता है। कंपनी ब्रोकरेज चार्ज पर अपने घटकों और ग्राहकों की ओर से शेयरों और प्रतिभूतियों के कारोबार में लगी हुई है और यह नेशनल स्टॉक एक्सचेंज ऑफ इंडिया लिमिटेड (एनएसई) और बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज ऑफ इंडिया लिमिटेड (बीएसई) का भी सदस्य है।

4. प्रतिवादी नंबर 2 ने कंपनी में सिक्योरिटीज ट्रेडिंग खाता नंबर 342889 खोलकर उसके माध्यम से खुद को एक घटक/ग्राहक के रूप में पंजीकृत किया था और लगभग आठ वर्षों तक कंपनी का एक शाही ग्राहक था। उसने 28 जून, 2005 को एक सदस्य-ग्राहक समझौता निष्पादित किया। 3 अगस्त, 2009 को, प्रतिवादी नंबर 2 ने, एक कानूनी नोटिस दिनांक 03.08.2009 के माध्यम से, अपीलकर्ताओं से अनुरोध किया कि वे अनधिकृत और धोखाधड़ी में शामिल होने के कारण उसे हुए नुकसान की

भरपाई करें। जुलाई, 2008 से जून, 2009 की अवधि के दौरान एक विनोद कोपर (कंपनी के रिलेशनशिप मैनेजर- संक्षेप में "आरएम") द्वारा उसके खाते में ट्रेडिंग की गई। यह नोटिस आरएम और कंपनी के सहायक उपाध्यक्ष रोहन राउत को भी 20 अक्टूबर, 2009 को भेजा गया था। इसके बाद, उन्होंने कंपनी के खिलाफ 48.99 लाख रुपये की राशि और 2.5 लाख रुपये की लागत के लिए एनएसई पैनल ऑफ आर्बिट्रेटर्स के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाही दायर की और अपनी पसंद के उच्च न्यायालय दो सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को मध्यस्थों के नाते चुना और आरएम को गवाह के रूप में बुलाने की मांग की। मध्यस्थों ने 18 अगस्त, 2010 को कंपनी के पक्ष में एक निर्णय पारित किया, जिसमें प्रतिवादी नंबर 2 के रुख में बदलाव दर्ज करते हुए, उसके पति को उसकी ओर से व्यापार करने के लिए अधिकृत किया गया। इस बीच, चूंकि पुलिस ने मामले का संज्ञान नहीं लिया, हालांकि उसने 31 मार्च, 2010 को अपीलकर्ताओं, आरएम और एवीपी के खिलाफ शिकायत दर्ज की, 10 जून, 2010 को उसने आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद सीआरपीसी के रूप में संदर्भित) की धारा 156(3) के तहत 10वें मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, अंधेरी के समक्ष केस संख्या 143/2010, द्वारा एक आपराधिक शिकायत भी दर्ज की जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा उनकी सहमति के बिना उनके खाते में अनधिकृत व्यापार के निष्पादन का आरोप लगाया गया था और दावा किया कि इससे उन्हें 70 लाख रुपये का नुकसान हुआ है। आरएम और अपीलकर्ता नंबर 3

के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए गए थे क्योंकि उन्हें अपीलकर्ता नंबर 3 द्वारा आरएम से मिलवाया गया था और बताया गया था कि आरएम अपने पूर्व निर्देशों के साथ अपने निवेश पोर्टफोलियो को ईमानदारी से और कुशलता से संभालेंगे। अन्य अपीलकर्ताओं की संलिप्तता के सामान्य आरोप लगाए गए थे। 25 सितंबर, 2010 को, उन्होंने मध्यस्थता आरईएफ नंबर सीएम/एम-213/2009 के तहत एनएसई अपीलीय पैनल ऑफ आर्बिट्रेटर्स के समक्ष एक अपील दायर की, जिसमें उन्होंने दिसंबर 2008 से अप्रैल 2009 की अवधि के दौरान हुए ट्रेडों पर विवाद किया। मध्यस्थता की कार्यवाही, उसमें पारित अवार्ड और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा की गई अपील से बेपरवाह, 04.01.2011 को विद्वान मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया और जांच के बाद रिपोर्ट देने का आदेश दिया।

5. विद्वान मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के दिनांक 4.01.2011 के आदेश के अनुसार, जुहू पुलिस स्टेशन ने धारा 409, 420, 465, 467 सपठित धारा 34 और 120-बी आईपीसी के तहत 30 जनवरी 2011 को 2011 के एमईसीआर नंबर 7 के तहत एफआईआर दर्ज की। इस बीच, अपीलीय न्यायाधिकरण ने 24 जनवरी, 2011 के अपने फैसले के तहत प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ अपील का फैसला किया था। अपीलीय न्यायाधिकरण ने पाया कि प्रतिवादी नंबर 2 ने अनुबंध नोट सहित सभी आवश्यक दस्तावेज प्राप्त करने के तथ्य से इनकार नहीं किया था आदि, अपीलकर्ताओं द्वारा

उसकी ओर से किए गए लेनदेन के संबंध में, जिन्हें ट्रेडिंग सदस्य द्वारा ट्रेड शुरू होने के तुरंत बाद निवेशक को जारी किया जाना आवश्यक था। इसके बाद, अपीलकर्ताओं ने बॉम्बे हाई कोर्ट के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जो 2011 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 672 थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उक्त एफआईआर को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी और यही प्रार्थना आरएम द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई 2011 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 767 में भी की गई थी। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 16.11.2011 द्वारा दोनों रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया क्योंकि उसके अनुसार, रिट याचिकाएं समय से पहले दायर की गई थीं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत या धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने विशेष अनुमति द्वारा यह अपील दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

6. इस अपील में निर्णय के लिए एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या 10 वें मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, अंधेरी की अदालत द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत निजी शिकायत, सीसी संख्या 143/विविध/2010 अन्तर्गत धारा 409, 420, 465, 467 सपठित धारा 34, 120 (बी) आईपीसी में पारित आदेश दिनांक 04.01.2011, साथ ही पुलिस स्टेशन, जुहू, जिला मुंबई में दर्ज 30 जनवरी, 2011 की एफआईआर एमईसीआर संख्या

7/2011, रद्द किये जाने योग्य।

7. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, सबसे पहले प्रासंगिक प्रावधानों यानी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156 और 482 को निर्धारित करना आवश्यक है:

> "156. संज्ञेय मामले की जाँच करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति.
>
> (1) किसी पुलिस स्टेशन का कोई भी प्रभारी अधिकारी, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, किसी भी संज्ञेय मामले की जांच कर सकता है, जिसकी ऐसे स्टेशन की सीमा के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले न्यायालय को अध्याय XIII के प्रावधानों के तहत जांच करने या मुकदमा चलाने की शक्ति होगी।
>
> (2) ऐसे किसी भी मामले में किसी भी पुलिस अधिकारी की कार्यवाही पर किसी भी स्तर पर इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जाएगा कि मामला ऐसा था जिसकी जांच करने के लिए ऐसे अधिकारी को इस धारा के तहत अधिकार नहीं था।
>
> (3) धारा 190 के तहत अधिकार प्राप्त कोई भी मजिस्ट्रेट ऊपर बताए अनुसार ऐसी जांच का आदेश दे सकता है।"

"482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की बचत.-

इस संहिता में ऐसा कुछ भी नहीं माना जाएगा जो इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने के लिए, या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करता हो या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करता हो

8. उच्च न्यायालय ने मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के 4 जनवरी, 2011 के आदेश को रद्द करने और रद्द करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलकर्ताओं ने मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के तहत प्रक्रिया जारी करने के चरण से पहले आवेदन किया था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, यदि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को प्रभावी करने की अनुमति दी गई तो अपीलकर्ताओं के मौलिक अधिकारों से समझौता किया जाएगा। इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क यह है कि मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अवैध है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। इसके विपरीत, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के तहत पुलिस द्वारा जांच की आवश्यकता वाले

आदेश से अपूरणीय प्रकृति की कोई चोट नहीं लगती है जिसके लिए जांच को रद्द करने की आवश्यकता होती है। आगे कहा गया है कि संज्ञान का चरण जांच रिपोर्ट दाखिल होने के बाद आएगा। इसलिए, उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा दायर किया गया आवेदन समय से पहले दायर किया गया आवेदन है और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 या संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी का आगे का तर्क यह था कि संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियों का संयम से उपयोग किया जाना चाहिए।

9. उच्च न्यायालय ने माना कि शिकायत की जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए संहिता की धारा 156 (3) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस को दिया गया निर्देश अपीलकर्ताओं को इसे रद्द करने का अधिकार नहीं दे सकता क्योंकि ऐसे रिपोर्ट दाखिल न होने पर आदेश पूरी तरह से अटकलों पर आधारित होगा। इसके अलावा, इसके परिणामस्वरूप शिकायत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया।

10. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अभिषेक सिंघवी ने कहा कि मौजूदा मामले में कार्यवाही शुरू करना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और इसे रद्द किया जा सकता है। उन्होंने तर्क

दिया कि यह एक स्थापित सिद्धांत है कि किसी आपराधिक मामले में किसी आरोपी को तलब करना एक गंभीर मामला है और आपराधिक कानून को इस तरह से लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए, मजिस्ट्रेट के आदेश को मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून पर दिमाग के प्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए। इस प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, विद्वान वकील ने अनिल कुमार बनाम एमके अयप्पा, (2013) 10 एससीसी 705, पैराग्राफ 11, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है, पर भरोसा किया है:

> "11. सीआरपीसी की धारा 156(3) का दायरा कई मामलों में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया। मकसूद सैय्यद मामले में इस न्यायालय ने धारा 156(3) के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग के प्रयोग की आवश्यकता की जांच की और माना कि जहां धारा 156(3) या धारा 200 सीआरपीसी के संदर्भ में दायर शिकायत पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना दिमाग लगाना आवश्यक है, ऐसे मामले में, विशेष न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट किसी वैध मंजूरी आदेश के बिना किसी लोक सेवक के खिलाफ धारा 156(3) के तहत मामले को संदर्भित नहीं कर सकता है। मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक का प्रयोग आदेश में प्रतिबिंबित होना चाहिए। केवल यह कथन कि उसने शिकायत, दस्तावेजों का अध्ययन

किया है और शिकायतकर्ता को सुना है, जैसा कि आदेश में दर्शाया गया है, पर्याप्त नहीं होगा। शिकायत, दस्तावेजों को देखने और शिकायतकर्ता को सुनने के बाद, सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत जांच का आदेश देने के लिए मजिस्ट्रेट ने क्या निर्णय लिया, उसे आदेश में दर्शाया जाना चाहिए, हालांकि उनके विचारों की विस्तृत अभिव्यक्ति की न तो आवश्यकता है और न ही इसकी आवश्यकता है। हमने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश पहले ही निकाल लिया है, जिसमें, हमारे विचार से, जांच का आदेश देने का कोई कारण नहीं बताया गया है।"

11. विद्वान मजिस्ट्रेट ने 04.01.2011 को एक आदेश पारित किया था जिसमें कहा गया था:

"शिकायत और संलग्न दस्तावेजों को पढ़ने से संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है। इसलिए श्रीनिवास गुंडूरी बनाम एमएस सेपको इलेक्ट्रिक पावर कंस्ट्रक्शन और अन्य आपराधिक अपील संख्या 1377/2010 और 1378/2010 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 30.07.2010 को निर्णय दिया गया कि जब शिकायत एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है, तो मजिस्ट्रेट शिकायत पर कार्यवाही

के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं, को तय करने के लिए अपना दिमाग लगाने के बजाय, पुलिस को जांच के लिए निर्देशित कर सकते हैं।

इसलिए, इन सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, शिकायत संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है। इसलिए, अपराध की प्रकृति को देखते हुए इसे सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत जांच के लिए पुलिस के पास भेजने की जरूरत है।'

12. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील डॉ. अभिषेक सिंघवी ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश को चुनौती देने के लिए इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण बनाम वी. नारायण रेड्डी एवं अन्य, (1976) 3 एससीसी 252, और राम देव फूड प्रोडक्ट्स प्रा. लिमिटेड बनाम. गुजरात राज्य, जो (2015) 6 एससीसी 439 में रिपोर्ट किया गया।

13. इसके अलावा, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि शिकायतकर्ता (प्रतिवादी नंबर 2) के इस तर्क में कोई दम नहीं है कि उसके ट्रेडिंग खाते से लेनदेन अनाधिकृत थे। जैसा कि शिकायतकर्ता ने विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष की गई शिकायत में स्वीकार किया था, शिकायतकर्ता के ट्रेडिंग खाते से उसके पति द्वारा ट्रेडिंग की जा

रही थी, और अपीलकर्ता नंबर 1 के साथ ट्रेडिंग खाता खोलने के समय शामिल थी, उसे सभी जोखिमों के बारे में अवगत कराया गया था और शिकायतकर्ता इस पर सहमत थी और समझती थी कि व्यापार में प्रवेश करने के सभी जोखिमों और परिणामों के लिए वह जिम्मेदार होगी। शिकायतकर्ता द्वारा किए गए समझौते का प्रासंगिक खंड यहां नीचे दिया गया है:

> "2.11 ग्राहक इस प्रकार सहमत है और घोषणा करता है: (i) ग्राहक अपने सभी निवेश निर्णयों और व्यापारों के लिए पूरी तरह जिम्मेदार होगा; (ii) ग्राहक लागू दैनिक मार्जिन का भुगतान करेगा; (iii) ग्राहक द्वारा मार्जिन का भुगतान आवश्यक रूप से सभी बकाया राशि की पूर्ण संतुष्टि नहीं दर्शाता है; (iv) लगातार भुगतान किए गए मार्जिन के बावजूद, ग्राहक अपने व्यापार के समापन पर, बाजार मूल्य या अनुबंध के साधन द्वारा निर्धारित अतिरिक्त रकम का भुगतान करने (या प्राप्त करने का हकदार) के लिए बाध्य हो सकता है; और (v) इसमें शामिल जोखिम को समझने में ग्राहक की विफलता या ग्राहक को जोखिम की व्याख्या करने में सदस्य की विफलता अनुबंध को शून्य या रद्द करने योग्य नहीं बनाएगी और ग्राहक डेरिवेटिव्स के व्यापार में प्रवेश करने के जोखिम और परिणाम सभी के लिए

जिम्मेदार होगा। "

14. शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 और अपीलकर्ताओं के बीच हुए समझौते के आलोक में, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा कि अपीलकर्ताओं के आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि आपराधिक अभियोजन के लिए बहुत उच्च मानक के सबूत की आवश्यकता होती है। उचित संदेह से परे, जबकि नागरिक मामलों में प्रमाण के निम्न स्तर की आवश्यकता होती है - संभावनाओं की प्रबलता। उन्होंने हमारा ध्यान ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार (2014) 2 एससीसी 1 के मामले में एक हालिया फैसले की ओर आकर्षित किया, जिसमें इस न्यायालय ने कहा:

> "इसलिए, पंजीकरण या गैर-पंजीकरण के संबंध में विभिन्न प्रतिदावों को देखते हुए, केवल यह आवश्यक है कि पुलिस को दी गई जानकारी संज्ञेय अपराध के आयोग का खुलासा करे. ऐसी स्थिति में एफआईआर दर्ज करना अनिवार्य है. हालाँकि, यदि दी गई जानकारी में कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, तो तुरंत एफआईआर दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है और शायद पुलिस यह सुनिश्चित करने के सीमित उद्देश्य के लिए एक प्रकार का प्रारंभिक सत्यापन या पूछताछ कर सकती है कि क्या संज्ञेय अपराध किया गया

है। लेकिन, यदि दी गई जानकारी में स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध होने का उल्लेख है, तो तुरंत एफआईआर दर्ज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। एफआईआर के पंजीकरण के चरण में अन्य विचार प्रासंगिक नहीं हैं, जैसे कि क्या जानकारी गलत दी गई है, क्या जानकारी वास्तविक है, क्या जानकारी विश्वसनीय है आदि। ये ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें एफ.आई.आर. की जांच के दौरान सत्यापित किया जाना है। एफआईआर दर्ज करने के चरण में, केवल यह देखा जाना चाहिए कि क्या दी गई जानकारी संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है। यदि जांच के बाद दी गई जानकारी झूठी पाई जाती है, तो झूठी एफआईआर दर्ज करने के लिए शिकायतकर्ता पर मुकदमा चलाने का विकल्प हमेशा मौजूद होता है।"

15. हमारी सुविचारित राय है कि वर्तमान मामले में तथ्यान्वेषी जांच को आक्षेपित आदेश द्वारा निर्देशित किया गया था। नतीजतन, अपीलकर्ता संख्या 2 से 4 और आरएम (विनोद कोपर) के खिलाफ एफआईआर दर्ज की गई। भारतीय आपराधिक कानूनी प्रणाली के तहत आरोपी को, जब तक कि वह दोषी साबित न हो जाए, हमेशा कानून के अनुसार खुद का बचाव करने के लिए उचित स्थान और स्वतंत्रता दी जाएगी। इसके अलावा, किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दोषी नहीं होने

का दावा करता है कि वह किसी अदालत, या अन्य न्यायाधिकरण के समक्ष उस प्रकृति की आपराधिक कार्यवाही या कार्यवाहियों में सहयोग करेगा और भाग लेगा, जिसके समक्ष उस पर आरोप लगाया जा सकता है। अपराध' जैसा परिभाषित किया गया है सामान्य धारा अधिनियम की धारा 3(38), यानी दंड संहिता या किसी विशेष या स्थानीय कानून के तहत दंडनीय कार्य। साथ ही, अपराध का संज्ञान लेते समय या कोई आदेश जारी करते समय अदालतों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना दिमाग लगाएं और आदेश तर्कसंगत होना चाहिए।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने रिट याचिकाओं को खारिज करने के उच्च न्यायालय के आदेश की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील के अनुसार, उच्च न्यायालय ने इकबाल सिंह मारवाह और अन्य बनाम मीनाक्षी मारवाह एवं अन्य, (2005) 4 एससीसी 370 और रुख्मनी नार्वेकर बनाम विजया स्टेटार्डेकर और अन्य, (2008) 14 एससीसी 1 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, पाया कि इस तर्क में कोई दम नहीं था कि प्रतिवादी नंबर 2 को अपनी शिकायत में मध्यस्थता की कार्यवाही और उसके परिणाम का खुलासा करना चाहिए था और भौतिक तथ्यों को दबाने के लिए उसी रकम का खुलासा नहीं करना चाहिए था। अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा कि उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि मध्यस्थता कार्यवाही के तहत आदान-प्रदान किए गए पत्राचार के साथ-साथ स्वीकृत

दस्तावेजों पर विचार करना सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उसके अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के भीतर था। ऑल कार्गो मूवर्स (इंडिया) (पी.) लिमिटेड बनाम धनेश बदरवाल जैन, (2007) 14 एससीसी 776 के मामले में उसके अनुच्छेद 17 पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय द्वारा माना गया था:

> "हमारी राय है कि शिकायत याचिका में लगाए गए आरोप, भले ही अंकित मूल्य दिए जाएं और पूरी तरह से सही माने जाएं, किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। उक्त उद्देश्य के लिए, यह न्यायालय न केवल स्वीकृत तथ्यों पर विचार कर सकता है, बल्कि मुकदमे में वादी-प्रतिवादी संख्या 1 की दलीलों पर भी गौर करने की अनुमति है। नोटिस में अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई भी आरोप नहीं लगाया गया था। जो तर्क दिया गया वह वाहक और उनके एजेंट की ओर से लापरवाही और/या अनुबंध का उल्लंघन था। अनुबंध सरलीकरण का उल्लंघन कोई अपराध नहीं बनता है। उक्त उद्देश्य के लिए, शिकायत याचिका में आरोपों के लिए आवश्यक सामग्री का खुलासा होना चाहिए। जहां एक सिविल मुकदमा लंबित है और शिकायत याचिका सिविल मुकदमा दायर करने के एक साल बाद दायर की गई है, हम यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या उक्त आरोप प्रथम

दृष्टया पार्टियों द्वारा आदान-प्रदान किए गए पत्राचार और अन्य स्वीकार्य दस्तावेज़ हैं, नोटिस नहीं कर सकते हैं। यह कहना एक बात है कि न्यायालय इस समय आरोपी के बचाव पर विचार नहीं करेगा, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए, स्वीकृत दस्तावेजों को देखना भी अस्वीकार्य है। जब यह दुर्भावनापूर्ण या अन्यथा न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग पाया जाता है तो आपराधिक कार्यवाही को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। वरिष्ठ न्यायालयों को इस शक्ति का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्य को पूरा करने का भी प्रयास करना चाहिए।

17. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील ने आगे कुछ और निर्णयों पर भरोसा किया, जिसमें यह अच्छी तरह से तय किया गया था कि रद्द करने के लिए लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या निर्विवाद आरोप लगाए गए हैं, प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय का उपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है और जहां, न्यायालय की राय में, अंतिम दोषसिद्धि की संभावना कम है, आपराधिक मुकदमा जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। उन्होंने माधवराव जीवनराव सिंधिया और अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रजीराव आंग्रे एवं अन्य, (1998) 1 एससीसी

692 (पैरा 7-8); हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 सप्प (1) एससीसी 335 (पैरा 102); राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर, (2013) 3 एससीसी 330 पैरा 30; ऋषि पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2014) 7 एससीसी 215, पैरा 12-13 के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

18. प्रतिवादीगण के विद्वान वकील ने अपने किसी भी तर्क में इस मुद्दे का खंडन नहीं किया है। वर्तमान मामले में नीचे दिए गए न्यायालयों के आदेशों की सूक्ष्म समझ के साथ, हम देख सकते हैं कि अपीलकर्ता संख्या 1 के संदर्भ में सामान्य और बेबुनियाद आरोप लगाए गए हैं, जो एक न्यायिक व्यक्ति है और प्राकृतिक व्यक्ति नहीं है। भारतीय दंड संहिता, 1860, किसी कंपनी द्वारा कथित रूप से किए गए किसी भी अपराध के लिए परोक्ष दायित्व का प्रावधान नहीं करती है। यदि और जब कोई प्रतिमा इस तरह की कानूनी कल्पना के निर्माण पर विचार करती है, तो यह विशेष रूप से उसके लिए प्रावधान करती है, उदाहरण के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम , 1881. इसके अलावा, एसके अलघ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2008) 5 एससीसी 662 में रिपोर्ट किया गया, पर निर्भरता बनाई गई थी, जहां पैराग्राफ 16 में, इस न्यायालय ने देखा कि *"भारतीय दंड संहिता, विशेष रूप से इसके लिए प्रदान किए गए कुछ प्रावधानों को छोड़कर, एक पार्टी जिस पर किसी अपराध के लिए सीधे आरोप नहीं लगाया गया है, के किसी भी प्रतिवर्ती दायित्व पर विचार नहीं*

करती है।" आगे मकसूद सैय्यद बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2008) 5 एससीसी 668 में रिपोर्ट किए गए पैराग्राफ 13 में, इस न्यायालय ने पाया कि जहां आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) या धारा 200 के संदर्भ में दायर शिकायत याचिका पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, मजिस्ट्रेट को अपना दिमाग लगाना आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता में कंपनी के प्रबंध निदेशक या निदेशकों की ओर से प्रतिवर्ती दायित्व संलग्न करने का कोई प्रावधान नहीं है, जब आरोपी कंपनी हो। विद्वान मजिस्ट्रेट अपने सामने सही प्रश्न पूछने में असफल रहे कि क्या शिकायत याचिका, भले ही अंकित मूल्य दी गई हो और पूरी तरह से सही मानी गई हो, इस निष्कर्ष पर पहुंचेगी कि इसमें उत्तरदाता किसी भी अपराध के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी थे। बैंक एक कॉर्पोरेट निकाय है. प्रबंध निदेशक और निदेशक की प्रतिवर्ती देनदारी उत्पन्न होगी बशर्ते कि क़ानून में इस संबंध में कोई प्रावधान मौजूद हो। क़ानून में निर्विवाद रूप से ऐसे प्रतिवर्ती दायित्व को तय करने वाले प्रावधान शामिल होने चाहिए। यहां तक कि उक्त उद्देश्य के लिए, शिकायतकर्ता की ओर से अपेक्षित आरोप लगाना अनिवार्य है जो परोक्ष दायित्व का गठन करने वाले प्रावधानों को आकर्षित करेगा। थर्मैक्स लिमिटेड और अन्य बनाम केएम जॉनी एवं अन्य, (2011) 13 एससीसी 412, और सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो, (2015) 4 एससीसी 609, पैरा 39 में इस न्यायालय ने कहा:

"इस तथ्य के अलावा कि शिकायत में आईपीसी की धारा 405, 406, 420 सपठित धारा 34 की आवश्यक सामग्री का अभाव है, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'प्रतिस्पर्धी दायित्व' की अवधारणा आपराधिक कानून के लिए अज्ञात है। जैसा कि पहले देखा गया है, किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कोई विशेष आरोप नहीं लगाया गया है, लेकिन बोर्ड के सदस्य और वरिष्ठ अधिकारी अपीलकर्ता-कंपनी के प्रबंधन और व्यवसाय की देखभाल करने वाले व्यक्तियों के रूप में शामिल हुए हैं।

19. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने अंततः इस तर्क पर अपीलकर्ताओं के खिलाफ एफआईआर को आंशिक रूप से रद्द करने के पक्ष में तर्क दिया कि उनकी ओर से कोई आपराधिक मामला नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उनके खिलाफ लगाए गए आरोप किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं और अपीलकर्ताओं को परेशान करने के उद्देश्य से लगाए गए थे। इसके अतिरिक्त, विद्वान वकील का तर्क है कि अपीलकर्ता नंबर 2 से 4 को पारस्परिक दायित्व के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, आर. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता एवं अन्य, (2009) 1 एससीसी 516 पर भरोसा करते हुए, जिसमें यह माना गया था:

> "हालांकि, इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ कोई भी आरोप नहीं लगाया गया है, प्रतिवादी संख्या 2 के खिलाफ एकमात्र आरोप यह था कि उसने उक्त पत्र दिनांक

10.1.2002 को नेशनल स्टॉक एक्सचेंज को भेज दिया था। उक्त पत्र पर जालसाजी/या निर्माण के कृत्य के लिए प्रतिवादी संख्या 3 को जिम्मेदार ठहराया गया था।

प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के खिलाफ इस आधार पर कार्रवाई करने की मांग की गई कि वे कंपनी के मामलों के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी हैं।

जैसा कि श्री मणि ने दिनांक 10.1.2002 के उक्त दस्तावेज़ की जालसाजी से संबंधित आरोपों का बार-बार उल्लेख किया है, हम एक परेशान करने वाला तथ्य भी देख सकते हैं। उक्त प्रथम सूचना दर्ज करने से पहले, अपीलकर्ता द्वारा 15.10.2002 को उत्तरदाताओं के खिलाफ एक नोटिस जारी किया गया था, जबकि प्रतिवादी नंबर 1 और 2 का पता क्रमशः 404, दूतावास केंद्र, नरीमन प्वाइंट, मुंबई - 400 021 और 302, वीणा चेम्बर्स, 21, दलाल स्ट्रीट, फोर्ट, मुंबई - 400 001 दिखाया गया था। हालाँकि, शिकायत याचिका में, उन्हें चेन्नई का निवासी दिखाया गया था।"

20. शरद कुमार सांघी बनाम संगता राणे, (2015) 12 एससीसी 781 (पैरा 9-11) में इस न्यायालय द्वारा नोट किया गया है:

"प्रबंध निदेशक के खिलाफ उनकी व्यक्तिगत क्षमता में

लगाए गए आरोप बिल्कुल अस्पष्ट प्रतीत होते हैं। जब कोई शिकायतकर्ता किसी कंपनी के प्रबंध निदेशक या किसी अधिकारी को फंसाने का इरादा रखता है, तो परोक्ष दायित्व का गठन करने के लिए अपेक्षित आरोप लगाना आवश्यक है।"

21. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि शिकायत में एक ऐसे अपराध के घटित होने का खुलासा किया गया है जो प्रकृति में संज्ञेय है और ललिता कुमारी के मामले (उपरोक्त) के आलोक में, एफआईआर का पंजीकरण अनिवार्य हो जाता है। हम देखते हैं कि जिस संदर्भ में वे घटित होते हैं, उसमें "संज्ञान ले सकते हैं" शब्दों के उपयोग से यह स्पष्ट है कि इसे "संज्ञान लेना चाहिए" के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। "हो सकता है" शब्द मजिस्ट्रेट को मामले में विवेकाधिकार देता है। यदि शिकायत को पढ़ने पर उसे पता चलता है कि उसमें लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं और धारा 156(3) के तहत जांच के लिए पुलिस को शिकायत अग्रेषित करना न्याय के लिए अनुकूल होगा और मजिस्ट्रेट का बहुमूल्य समय बर्बाद होने से बचाएगा। किसी मामले की जांच करने में बर्बाद किया गया, जिसकी जांच करना मुख्य रूप से पुलिस का कर्तव्य था, अपराध का स्वयं संज्ञान लेने के विकल्प के रूप में उस रास्ते को अपनाना उचित होगा। यह तय है कि जब एक मजिस्ट्रेट को शिकायत प्राप्त होती है, यदि शिकायत में कथित तथ्य

किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं तो वह संज्ञान लेने के लिए बाध्य नहीं है

22. उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आगे कहा कि मध्यस्थता कार्यवाही की नागरिक प्रकृति और वर्तमान कार्यवाही की आपराधिक प्रकृति के बीच एक स्पष्ट अंतर है और आरएम को उसी दिन कार्यमुक्त करना जब उन्होंने अपना इस्तीफा दिया था, उस आचरण को दर्शाता है जिसके तहत साजिश साबित हो सकती है। आगे यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 2 ने अपीलकर्ताओं द्वारा उसे हुए नुकसान की भरपाई करने का अनुरोध करते हुए कानूनी नोटिस भी भेजा है, जिस पर आपराधिक न्यायालय और मध्यस्थता न्यायाधिकरण ने संज्ञान लिया है। इस प्रकार, सभी अपीलकर्ताओं के खिलाफ पहले ही आरोप लगाए जा चुके थे। हमें उक्त निवेदन में कोई तथ्य नहीं दिखता जो पूरी तरह से स्थापित कानूनी सिद्धांतों के विपरीत है। फिर भी, हमें पेटेंट में अवैधताएं मिलती हैं जिसके परिणामस्वरूप पूरी जांच ख़राब हो जाएगी जिसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि होगी।

23. प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री बसव प्रभु पाटिल ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 2 ने अपनी शिकायत में अपीलकर्ताओं के आचरण को उजागर किया था और आरोप लगाया था कि उनके आचरण से उसे गलत नुकसान हुआ और अपीलकर्ता

और अन्य आरोपी को गलत लाभ हुआ। यह एक तथ्य है कि अभियुक्तों को तलब करते समय, अदालतों को रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों की जांच करने और आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए उत्तर प्राप्त करने में सावधानी बरतनी चाहिए।

24. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ताओं ने प्रक्रिया जारी होने के चरण से पहले ही उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। विशेष रूप से, अपीलकर्ताओं ने सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 04.01.2011 के आदेश को चुनौती दी। अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने मामले में अपने तर्कों का सारांश देने के बाद इस संदर्भ में भी जोर दिया है कि संविधान के तहत अपीलकर्ताओं के मौलिक अधिकार पर लागू आदेश ने अपीलकर्ताओं के लिए गंभीर असमानताएं पैदा की हैं। इन परिस्थितियों में, यह प्रस्तुत किया गया कि आदेश अवैध है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। हालाँकि, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सीआरपीसी की धारा 156(3) के तहत पुलिस द्वारा जांच की आवश्यकता वाले इस आदेश के कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि इससे अपूरणीय प्रकृति की क्षति हुई है, जिसके लिए इस स्तर पर जांच को रद्द करने की आवश्यकता है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि संज्ञान का चरण मजिस्ट्रेट के समक्ष जांच रिपोर्ट दाखिल होने के बाद ही उत्पन्न होगा। इसलिए, हमारी राय में, इस स्तर पर उच्च न्यायालय ने इस स्थिति में तथ्यों और कानून का सही आकलन किया है

और माना है कि इस स्तर पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर याचिका समय से पहले के अलावा और कुछ नहीं हैं। इसके अलावा, हमारी राय में, उच्च न्यायालय सही ढंग से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का संयम से उपयोग किया जाना चाहिए। इन परिस्थितियों में, हमें नहीं लगता कि आक्षेपित आदेश में कोई खामी है या उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिकाओं को खारिज करने में उच्च न्यायालय द्वारा कोई अवैधता की गई है। तदनुसार, हम रिट याचिकाओं को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हैं।

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्याम सुंदर (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।